

कृष्ण भक्ति और पुष्टिमार्ग

डॉ. उषा शर्मा

व्याख्याता-हिंदी साहित्य

राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय

राजसमंद

हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में वेदांत के प्रमुख संप्रदायों में श्रीमद् वल्लभाचार्य का अपना स्थान है इन्होंने भक्ति काल में कृष्ण भक्ति की जो लौ जगाई वह आज भी जनमानस में आध्यात्मिक प्रकाश भर देती है। हिन्दी साहित्य में कृष्णभक्ति काव्य की प्रेरणा देने का श्रेय श्री वल्लभाचार्य (1478 ई-1530 ई) को जाता है जो पुष्टिमार्ग के संस्थापक और प्रवर्तक थे। श्री वल्लभाचार्य जी के निबंध, सूत्र, भाष्य और श्री सुबोधिनी जी से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेदों का सरल और शुद्ध तात्पर्य एकमात्र शुद्धाद्वैत का ही है। श्री वल्लभाचार्य जी ने सिद्धांत रूप से वेद का प्रतिपादन किया।

माया संबंध रहितं शुद्ध भित्युच्यते बुधेः।

कारण रूपम शुभम भ्रम ने माई कम मायिकम्॥

यह परब्रह्म सत् चित् तथा आनंद स्वरूप है। भगवान रसोः वै सः अखिल रसामृत मूर्ति अखिल लीला निकेत श्री कृष्ण ही परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम है। अग्नि से स्फुलिंगों के समान उस पर परब्रह्म से जीवों का आविर्भाव होता है। जगत भगवान की लीला का विलास है। अविर्भाव तथा तिरोभाव नामक भगवत शक्तियों के कारण इस जगत का विकास तथा लय होता है। धर्म सर्वशक्तिमान सर्व स्वतंत्र और सर्व व्यापक है। वह ब्रह्म निर्गुण होते हुए भी और निराकार होते हुए भी साकार है। जीवात्मा चित्कण सूक्ष्म नित्य तथा आनंद स्वरूप है जीव अविद्या ग्रस्त है। अतः आनंद स्वरूप होकर भी सांसारिक दुख पाता है रहता है। जिससे इस जीव में दिनता, दुख और अहंकार आदि की उत्पत्ति होती रहती है। ब्रह्म चित्त और प्रकट आनंद है, परंतु जीव तिरोहित आनंद है। जगत नित्य सत्य और भगवत स्वरूप है। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी का मत है कि 'ईश्वर ने जो कुछ किया है वह माया के द्वारा नहीं किया, वह तो स्वयं उसने ही अपने महात्म्यमें से किया है।'¹

यह जीव संसार में सामान्य बुद्धि से देखता है तब पता है कि यह संसार विपत्तियों का आगार है चारों ओर से विपत्तियां आकर हमें थपेड़े मार रहे हैं जिधर दृष्टि डालें उधर दुखी का सादर उग्र रहा है ऐसे समय में वल्लभाचार्य ने मानव जीवन को इन बंधनों से छुड़ाकर आनंद के मार्ग पर अनुग्रह के भाव की प्राप्ति की ओर मोड़ना चाहा।

ब्रह्मा संबंध पुष्टिमार्ग के सिद्धांत को व्यवहारिक रूप किस विधि के द्वारा दिया जाता है उसका नाम ब्रह्म संबंध है इसकी आज्ञा श्री वल्लभाचार्य जी ने सिद्धांत रहस्य रहस्य में व्यक्त की है जिसमें गुरु शिष्य को भगवान के साथ संबंध करवा देता है भगवान श्री कृष्ण ही हमारे शरण हैं श्री कृष्णा शरणम् ममः है, इस मंत्र के द्वारा गुरु शिष्य को श्री कृष्ण की शरण में ले जाता है आचार्य वल्लभाचार्य ने कहा है ततमा सर्वात मनः नित्यम श्री कृष्ण शरणम् ममः इसके अनंतर गुरु शिष्य को भगवान के स्वरूप के पास ले जाते हैं।

“श्री वल्लभाचार्य जी ने 'पुष्टि' को परिभाषित करते हुए कहा है 'पोषण तदानुग्रह' अर्थात् ईश्वर का अनुग्रह कृपा ही पोषण है।”² पुष्टिमार्ग शुद्धाद्वैत के दर्शन को ही भक्ति में ढालता है। पुष्टि का शाब्दिक अर्थ है 'पोषण'। श्रीमद्भागवत में ईश्वर के अनुग्रह को पोषण कहा गया है- “पोषणं तदानुग्रहः।” वल्लभाचार्य के अनुसार, “कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टिः कालादि बाधक” अर्थात् कालादि के प्रभाव से मुक्त करने वाला कृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है। पुष्टिमार्गी भक्ति का मूलाधार भगवत्कृपा और उनके प्रति पूर्ण समर्पण है। भक्त के भगवान की ओर ध्यान ले जाने के पहले ही भगवान भक्त पर अपनी कृपा वर्षा कर देता है। कृष्ण की मुरली द्वारा गोपियों पर कृपा वर्षा होती है। कृष्ण की यह मुरली अनुग्रह संचारिका है। पुष्टिमार्ग में भक्त स्वयं को पूर्णतया भगवान के आसरे छोड़ देता है।

‘इस देश प्राण मन अंतःकरण इंद्रिय जनित गुणधर्म स्त्री पुत्र घर कुटुंब धनेश्वरी यही लोग परलोक सुख दुख अहमता ममता आदि को मैं अपनी आत्मा के है श्रीकृष्ण में तुम्हें समर्पण करता हूं जो कुछ भी है, वह तेरा है मैं तुम्हारा हूं गुरु की कृपा से आप मुझे अपना लो।’³

श्री वल्लभ के गुण गाइए जो चाहो आनंद भक्ति रस हियर में बड़े मीठे सकल दुख द्रंदा

श्री वल्लभ यह नाम है वल्लभियन के प्राण भक्ति रस पुष्टि करा प्रकटे कृपा निधान।

पुष्टि मार्ग भगवान के अनुग्रह को मुक्ति का एकमात्र साधन बतलाने का सिद्धांत आधुनिक नहीं है। वेद काल से चला आ रहा है। उपनिषदों में यत्र तत्र सूत्र रूप में पाया जाता है। श्रुति में सूत्र रूप से है उसका भाष्य हमें भागवत में उपलब्ध होता है। भागवत में भगवत अनुग्रह को बड़ा महत्व दिया है। जैसा ही भक्त भगवान के सम्मुख होता है, भगवान दया करके उसके समस्त पाप को जलाते हुए उसे अपना लेते हैं तथा दुखों से मुक्ति उसे प्राप्त होती है। वह भक्तवत्सल है।

भागवत में भगवान को कल्पतरु स्वभाव वाला कहा है। सब कुछ भगवत इच्छा पर ही निर्भर है। वह जब चाहेंगे तभी हमारे मनमंदिर को संवारेंगे। बस इसी स्वीकार का नामांतर अनुग्रह है। वह हमारे हृदय में स्थिर हो जाए इसके सिवा और क्या अनुग्रह होगा। यह भगवान का अनुग्रह कहलाता है इसे ही पुष्टि मार्ग कहा है।

“श्री महाप्रभु जी ने अपनी ‘सिद्धान्त मुक्तावली’ में बतलाया है कि भगवान के अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए उनकी सेवा करनी चाहिए। अपने चित्त को भगवान से जोड़ना ही सेवा है।”⁴ इसीलिए पुष्टिमार्ग में मंगला श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या आरती एवं शयन, इस अष्टयाम की सेवा को भगवद् अनुग्रह का मुख्य साधन माना जाता है। पुष्टिमार्ग में भक्ति साधन भी है और साध्य भी। ‘पुष्टि प्रवाह’ में भक्ति के स्वरूप का तात्त्विक दृष्टि से निरूपण करते हुए महाप्रभु जी कहते हैं, “प्रभु से जब भक्त का राग धीरे धीरे परिपक्व होकर अनुराग में परिणत हो जाता है, तब भक्त को न तो कोई आकांक्षा रहती और न ही किसी भी प्रकार की छटपटाहट।”⁵ इस स्थिति में वह आनन्द के सागर में डुबकियां लगाने लगता है। अपेक्षित परिणाम हासिल नहीं होने पर विचलित नहीं होता।

पुष्टिमार्ग पर भगवान् का अनुग्रह ही नियामक होता है, अन्य कोई नियम या शास्त्रीय विधान नियामक नहीं होता। मर्यादा भगवान् के अधीन होती है, लेकिन पुष्टि स्वाधीन होती है। पुष्टि में भक्त का स्वतंत्र्य होता है, अर्थात् कृपालु भगवान् अपने निःसाधन प्रेमी भक्त की इच्छानुसार कार्य करते हैं। भगवान् इसी कारण यशोदा मैया की इच्छानुसार रस्सी में बँध गये थे तथा “गोपियों की इच्छा से छछिया पर भर छाछ पर नाचते थे।”⁶ पुष्टिमार्ग में भक्त का दैन्य ही भगवत्कृपा का साधन है। श्री वल्लभाचार्य का मत है कि पुष्टि जीव की सृष्टि भगवतरूप - सेवा के लिए ही होती है। भगवान् पुष्टि भक्त के हृदय में अपने प्रेम बीज रख देते हैं। भक्ति से वह बढ़ता चलता है। क्रमशः आसक्ति और व्यसन की स्थिति तक पहुँच जाता है। इसलिए “पुष्टिजीव को सर्वदा सर्वभाव से भगवत्सेवा करना चाहिए। यह उसका धर्म है, यही उसका परम कर्तव्य है।”⁷ इसके बाद तो प्रभु उसके कल्याण के लिए सब कुछ करेंगे ही, अतः उसे अन्य कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भगवत्सेवा न तो कोई कर्मकाण्ड और न पार्ट टाईम जाब है। भगवत्सेवा तो भगवत्प्रवणता है, प्रभु में तन्मयता है। जैसे गंगा की धारा निरन्तर बहती ही रहती है तथा अन्ततः अपनी गन्तव्य समुद्र में मिल जाती है, उसी प्रकार भक्त के मन में प्रभु के प्रति प्रेम का सतत निरन्तर, अखंड प्रवाह भगवान् के प्रति होना चाहिए। उसका मन भगवान् में तल्लीन रहना चाहिए। यह स्थिति क्रमशः परिपक्व होती चलती है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने सेवामार्ग को न केवल कर्ममार्ग से और ज्ञानमार्ग से भिन्न बताया है, अपितु वे इसे शास्त्रीय विधि विधानों वाले विहित भक्ति मार्ग से भी अलग मानते हैं, अतः पुष्टिमार्ग कर्म-ज्ञान-भक्ति तीनों मार्गों से विलक्षण चतुर्थ मार्ग या तुरीय मार्ग कहलाता है। भक्तिमार्ग से पुष्टिमार्ग इस अर्थ में विलक्षण है कि विहित भक्तिमार्ग में भगवान् की पूजा-अर्चना शास्त्रीय विधि से मंत्रोच्चार के साथ सम्पन्न की जाती है, किन्तु पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवा विशुद्ध स्नेहात्मिका, भावात्मक होती है। श्री वल्लभाचार्य पूजा और सेवा को भी भिन्न मानते हैं। पूजा शास्त्रीय विधि-विधान से होती है, जबकि सेवा में स्नेह, प्रेम ही प्रधान है। आपका मत है कि विविध देवी-देवताओं या भगवान् के विभूति रूपों की अर्चना पूजा है, सेवा नहीं। इनकी सेवा का समावेश कर्ममार्ग के अन्तर्गत है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चना भक्तिमार्गीय सेवा है, कर्ममार्गीय अनुष्ठान नहीं। श्रीवल्लभाचार्य की सुदृढ़ मान्यता है कि भगवान् की प्राप्ति स्नेहात्मिका सेवा से ही होती है, न कि विधि-विधान-प्रधान कृतिरूपा (कर्मकाण्ड रूपा) पूजा से। कृति का सार्वजनिक प्रदर्शन हो सकता है, किन्तु स्नेह तो शुद्ध रूप से व्यक्तिगत और गोपनीय होता है। व्यक्तिगत प्रेम का प्रदर्शन करने से वह रस न रहकर रसाभास हो जाता है। इस कारण श्री वल्लभाचार्य के सेवामार्ग (पुष्टिमार्ग) में भगवान् श्रीकृष्ण की गृहसेवा होती है। वहाँ सार्वजनिक मंदिर नहीं होते। नन्दालय या निजी हवेली में निजी रूप से व्यक्तिगत स्तर पर गृहसेवा की जाती है। बालकृष्ण की यह गृहसेवा माता यशोदा के वात्सल्य भाव से की जाती है। स्नेहमयी भावात्मक गृहसेवा में परिवार के सदस्य एवं अत्यन्त घनिष्ठ आत्मीय भगवदीयजन ही सम्मिलित होकर सहभागी बन सकते हैं।

वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैतवाद दर्शन के भक्तिमार्ग को पुष्टिमार्ग कहते हैं। शुद्धाद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म माया से अलिप्त है, इसलिये शुद्ध है। माया से अलिप्त होने के कारण ही यह अद्वैत है। यह ब्रह्म सगुण भी है और निर्गुण भी। सामान्य बुद्धि को परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली बातों का ब्रह्म में सहज अन्तर्भाव हो जाता है। वह अणु से भी छोटा और सुमेरु से भी बड़ा है। वह अनेक होकर भी एक है। यह ब्रह्म स्वाधीन होकर भी भक्त के अधीन हो जाता है। विशिष्टाद्वैत की तरह शुद्धाद्वैतवादी ने भी ब्रह्म के साथ साथ जगत को भी सत्य बताया है। कारणरूप ब्रह्म के सत्य होने पर कार्यरूप जगत मिथ्या नहीं हो सकता। ब्रह्म की प्रतिकृति होने के कारण जगत की त्रिकालाबाध सत्ता है। जीव और जगत का नाश नहीं होता, सिर्फ आविर्भाव और तिरोभाव होता है।

पुष्टिमार्ग में जीवों के तीन प्रकार बताये जाते हैं प्रवाह जीव, मर्यादा जीव और पुष्टि जीव। जन्म मरण के बंधन में बँधे जीव को 'प्रवाह जीव' कहते हैं जो जीव वेद, उपनिषद आदि के अध्ययन से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करता है उसे 'मर्यादा जीव' कहते हैं और जीव भगवान की भक्ति और स्नेह को अपना अवलंब बनाता है, उसे 'पुष्टि जीव' कहते हैं।

पुष्टि मार्ग में भक्ति की भी तीन प्रकार की अवधारणाएँ हैं प्रवाह पुष्टि भक्ति, मर्यादा पुष्टि भक्ति और शुद्ध पुष्टि भक्ति। 'प्रवाह पुष्टि भक्ति' के अन्तर्गत जन्म मरण के चक्र में बँधा भक्त ईश्वर का स्मरण करता हुआ क्रमिक मोक्ष प्राप्त करता है। 'मर्यादा पुष्टि भक्ति' के अन्तर्गत भक्त शास्त्रों से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के बाद भगवान की ओर उन्मुख होता है और मोक्ष की ओर बढ़ता है। 'शुद्ध पुष्टि भक्ति' में भक्त स्वयं को पूर्णतया भगवान की शरण में समर्पित कर देता है। यहाँ भगवान अपने बच्चे की तरह भक्त का पालन करते हैं। भगवान के चरणों में पूर्णतया समर्पित भक्त भगवान के स्नेह का भाजन बनता है। शुद्ध पुष्टि भक्त की मुक्ति सबसे शुद्ध, सरल और सुगम होती है। भगवान की शरण में आते ही भक्त के सारे दुःख दूर हो जाते हैं। पुष्टि मार्गी भक्ति को माधुर्य भक्ति, प्रेमाभक्ति या रागानुगा भक्ति कहते हैं। इस भक्ति में शृंगार के स्वरूप का आध्यात्मिक रूपांतर होता है। यहाँ भगवान कृष्ण भक्त के एकमात्र अवलंबन होते हैं, जबकि जीव और गोपियाँ आश्रय। भक्ति के विकास के तीन चरण होते हैं-प्रेम, आसक्ति और व्यसन। व्यसन इस प्रेम की चरम अवस्था है, जहाँ पहुँचकर भक्त को भगवान के सिवा कुछ नज़र नहीं आता।

गोस्वामी बिट्टलनाथ ने संवत् 1602 के लगभग अपने पिता वल्लभ के 84 शिष्यों में से चार और अपने 252 शिष्यों में से चार को लेकर 'अष्टछाप' के प्रसिद्ध भक्त कवियों की मंडली की स्थापना की।

इन आठ भक्त कवियों में चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे -

- कुम्भनदास
- सूरदास
- परमानंद दास
- कृष्णदास

अन्य चार गोस्वामी बिट्टलनाथ के शिष्य थे -

- गोविंदस्वामी
- नंददास
- छीतस्वामी
- चतुर्भुजदास

ये आठों भक्त कवि श्रीनाथजी के मन्दिर की नित्य लीला में भगवान श्रीकृष्ण के सखा के रूप में सदैव उनके साथ रहते थे, इस रूप में इन्हें 'अष्टसखा' की संज्ञा से जाना जाता है।

अष्टछाप के भक्त कवियों में सबसे ज्येष्ठ कुम्भनदास थे और सबसे कनिष्ठ नंददास थे। काव्यसौष्ठव की दृष्टि से सर्वप्रथम स्थान सूरदास का है तथा द्वितीय स्थान नंददास का है। सूरदास पुष्टिमार्ग के जहाज कहे जाते हैं। ये वात्सल्य रस एवं शृंगार रस के अप्रतिम चित्ते माने जाते हैं। इनकी महत्त्वपूर्ण रचना 'सूरसागर' मानी जाती है। नंददास काव्य सौष्ठव एवं भाषा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं में 'रासपंचाध्यायी', 'भंवरगीत' एवं 'सिद्धांतपंचाध्यायी' है। परमानंद दास के पदों का संग्रह 'परमानन्द-सागर' है। कृष्णदास की रचनाएँ 'भ्रमरगीत' एवं 'प्रेमतत्त्व निरूपण' है। कुम्भनदास के केवल फुटकर पद पाये जाते हैं। इनका कोई ग्रन्थ नहीं है। छीतस्वामी एवं गोविंदस्वामी का कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। चतुर्भुजदास की भाषा प्रांजलता महत्त्वपूर्ण है। इनकी रचना द्वादश-यश, भक्ति-प्रताप आदि है। सम्पूर्ण भक्तिकाल में किसी आचार्य द्वारा कवियों, गायकों तथा कीर्तनकारों के संगठित मंडल का उल्लेख नहीं मिलता। अष्टछाप जैसा मंडल आधुनिक काल में भारतेन्दु मंडल, रसिकमंडल, मतवाला मंडल, परिमल तथा प्रगतिशील लेखक संघ और जनवादी लेखक संघ के रूप में उभर कर आए। अष्टछाप के आठों भक्त-कवि समकालीन थे। इनका प्रभाव लगभग 84 वर्ष तक रहा। ये सभी श्रेष्ठ कलाकार, संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार थे। गोस्वामी बिट्टलनाथ ने इन अष्ट भक्त कवियों पर अपने आशीर्वाद की छाप लगायी, अतः इनका नाम अष्टछाप पड़ा।

संदर्भ

1 भाग श्रीमद् भागवत टीका सुबोधिनी, द्वितीय स्कंद चतुर्थ अध्याय, दशम श्लोक

2 श्रीमद् भागवत के द्वितीय स्कंध के दशम अध्याय के चतुर्थ श्लोक में

3 अहन्ताममतानाशे सर्वथा निरहडंकृतौ।

स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते॥

-बालबोध

4 कृष्ण सेवा सदा कार्य मानसी सा परा मता।

5 इच्छामात्रेण मनसा प्रवाह सृष्टिवान्हरिः। वाचासा वेद मार्ग हि पुष्टि कायेन निश्चयः॥

- 'पुष्टि प्रवाह'

6 ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भर छाछ पे नाच नचावे।.. – कवि रसखान

7 सर्वदा सर्वभावेन भजनीयों ब्रजाधिपः। स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्याः क्वापि कदाचन॥

– चतुःश्लोकी